International Journal of Academic Research and Development
ISSN: 2455-4197, Impact Factor: RJIF 5.22
www.academicsjournal.com
Volume 2; Issue 4; July 2017; Page No. 97-98

सूर एवं तुलसी काव्य का विवेचनात्मक अध्ययन

डॉ. पूनम काजल

असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, हिन्दू कन्या महाविद्यालय जीन्द।

सारांश

भक्तिकालीन साहित्य में तुलसीदास एवं सूरदास ऐसी महान् विभूतियाँ हैं, जिन्होंने अपने साहित्य द्वारा तत्कालीन ह्रासोन्मुख समाज का मार्गदर्शन किया। एक ओर जहाँ तुलसीदास 'रामचरितमानस' जैसे श्रेष्ठतम महाकाव्य की रचना कर जीवन के विविध पक्षों को पाठकों के समक्ष जीवन्त कर देते हैं, वही सूरदास अपने अनूठे वात्सल्य–चित्रण एवं कृष्ण की लोकरंजनकारी लीलाओं द्वारा पाठक के मन को माधुर्य भाव से ओत–प्रोत कर देते हैं।

मुख्य शब्दः संजीवनी, अभिन्नता, अद्वैतवाद, उद्भावना, अकाट्य

प्रस्तावना

तुलसीदास ने रामचरितमानस, विनय पत्रिका, दोहावली, कवितावली आदि रचनाओं के द्वारा हिन्दी के सगुण साहित्य को समृद्ध किया, वहीं सूरदास ने "सूरसागर" जैसे गेय मुक्तक काव्य के द्वारा भगवान की लीलाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन कर उनके लोकरंजक रूप को चित्रित किया। इन दोनों ही महाकवियों ने अपने दैन्यपूर्ण पदों की रचना में भक्त–हृदय की समस्त ग्लानि, दीनता एवं पश्चाताप को उँडेल दिया है। जहाँ तुलसी 'विनयपत्रिका' में भक्त की कातरता एवं हृदय की निश्छलता का प्रतिपादन करते हैं, वही सूरदास 'प्रभु हौं सब पतितन को टीकौं' कहकर अपनी दीनता को प्रकट करते हैं। सही अर्थों में तुलसीदास एवं सूरदास का हिन्दी सगुण भक्ति साहित्य में उल्लेखनीय योगदान है।

तुलसीदास के सन्दर्भ में निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि वे भारतीय संस्कृति के एक ऐसे ज्वलंत प्रतीक हैं जिन्होंने राम के जीवन के विशद प्रसंगों के माध्यम से हिन्दू जनता को नवचेतना प्रदान ही। समन्वयवादी दृष्टिकोण को अपनाते हुए उन्होंने सर्वप्रथम धार्मिक क्षेत्र में व्याप्त भेद–भाव को मिटाते हुए शैवों एवं वैष्णवों तथा शाक्तों एवं वैष्णवों में समन्वय स्थापित किया। उन्होंने अनेक स्थलों पर राम को शिव का और शिव को राम का उपासक बताकर उनकी अभिन्नता द्वारा पारस्परिक वैमनस्य को दूर करने का प्रयास किया। तुलसी के राम स्पष्ट घोषणा करते हैं –

"शिव द्रोही मम दास कहावा।
सो नर मोहिं सपनेहुँ नहिं पावा।।

'रामचरितमानस' में वर्णित शबरी और निषादराज के प्रसंग में छूत–अछूत का सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है। तुलसीदास ने रामानुजाचार्य के विशिष्टताद्वैत एवं शंकराचार्य के अद्वैतवाद में भी समन्वय का परिचय दिया। इसके साथ ही 'भगतिहिं ज्ञानहिं नहिं कछु भेदा' कहकर वे ज्ञान और भक्ति में समन्वय करते प्रतीत होते हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी उनकी समन्यवादिता की भावना के सम्बन्ध में लिखते हैं– कि उनका सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है। लोक और शास्त्र का समन्वय, गार्हस्थ्य और वैराग्य का समन्वय, भक्ति और ज्ञान का समन्वय, भाषा और संस्कृति का समन्वय, निर्गुण और सगुण का समन्वय, पांडित्य और अपांडित्य का समन्वय, रामचरितमानस शुरू से आखिर तक समन्वय का काव्य है।

हिन्दी सगुण भक्ति काव्य में तुलसी का अन्य विशिष्ट योगदान लोक–मंगल की भावना का प्रसार करना है। उनके राम का मर्यादित स्वरूप अपने शील, शक्ति और सौन्दर्य से युग–परिवर्तन का सामर्थ्य रखता है। राम का आदर्श व्यक्तित्व विश्व बन्धुत्व एवं मानव धर्म का प्रणेता रहा। समाज की निन्दा अथवा आलोचना की अपेक्षा सुधार एवं आदर्शवाद ही तुलसी का मौलिक उद्देश्य रहा। उन्होंने जनमानस को भाग्य भरोसे न रहकर कर्मवादी बनने के लिए प्रेरित किया। तुलसी कृत काव्य 'स्वान्तः सुखाय' होते हुए भी सर्व सुखाय सिद्ध हुआ है। इसमें व्यक्तिगत साधन के साथ ही लोक धर्म की छटा भी विद्यमान है। तुलसी काव्य निःसन्देह विविध जातियों, विविध भाषाओं, धर्मों और विविध विचारों वाले समाज के सदस्यों को स्वधर्म और अधिकारों के प्रति सजग करता है।

नैतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से ह्रासोन्मुख भारतीय समाज को सही राह दिखाने हेतु समाज में अनुशासन, मर्यादा एवं आदर्श की स्थापना हेतु तुलसीदास ने अपने 'मानस' में प्रभु राम को आदर्श राजा, सीता को आदर्श पत्नी, भरत एवं लक्ष्मण को आदर्श भाई एवं हनुमान को आदर्श सेवक के रूप में प्रस्तुत कर आदर्शवाद की प्रतिस्थापना की। उनके राम प्रेम एवं कर्त्तव्य के आधार पर सम्पूर्ण जगत में आदर्श राज्य की स्थापना के लिए सतत संकल्पशील रहे। उनके चरित्रों में निहित आदर्श की भावना भारतीय समाज को मजबूती प्रदान करती है। यह आदर्श व्यक्ति व समाज का उत्थान कर उसमें नई शक्ति एवं ऊर्जा का संचार करता है।

यह भी सत्य है कि तुलसी युगीन समाज जाति–पाति एवं ऊँच–नीच के भेद–भाव से ग्रसित था। उन्होंने विविध प्रसंगों एवं पात्रों के माध्यम से इस विषमता को दूर करने का प्रयास किया। ऊँच–नीच की खाई को पाटने हेतु उन्होंने श्रीराम को शबरी के जूठे बेर खिलवाए, उच्चकुलोद्भव राम का तुच्छ भालू एवं वानर से आलिंगन करवाया। वे ब्राह्मण कुल श्रेष्ठ गुरुवर वशिष्ठ जी को और शूद्र कुल में उत्पन्न निषादराज को परस्पर गले मिलते दिखाकर दोनों वर्गों को सद्भाव एवं समन्वय का सन्देश देते प्रतीत होते हैं। सामाजिक रूढ़ियों, विसंगतियों एवं मानवीय दुष्प्रवृत्तियों की ओर अँगुली उठाकर उसका प्रतिकार करने का स्पष्ट आग्रह 'झूठा भोजन झूठ

चबेना' में दिखाई देता है।

तुलसी–साहित्य में तत्कालीन राजनीति की स्पष्ट छाप भी विद्यमान है। उन्होंने जिस प्रजातंत्र की कल्पना की है, वह आधुनिक प्रजातांत्रिक प्रणाली से कहीं अधिक मंगलमय है। अपने राजनीतिक विचारों को वे रामत्व की रावणत्व पर विजय की कल्पना से अभिव्यक्त करते हैं। तुलसी ने आदर्श परिवार की परिकल्पना कर परिवार एवं समाज के पारस्परिक समन्वय के सिद्धान्त की भी पुष्टि की है।

इसके साथ–साथ तुलसी ने काव्य के कला–पक्ष को जिस प्रकार से समृद्ध किया, वह अपने आप में अनूठा है। रामचरितमानस के रूप में श्रेष्ठ महाकाव्य, विनयपत्रिका के रूप में मुक्तक तथा गीतावली, कवितावली में गीति तत्व पर आधारित पदों की रचना से तुलसी की बहुमुखी प्रतिभा का स्वतः ही आभास हो जाता है।

यदि हम सगुण भक्त कवि सूरदास के सन्दर्भ में बात करें, तो हम पाएँगे कि सूरदास सगुण भक्ति काव्य के ऐसे महानतम कवि हैं जिन्होंने एक ओर तो सख्य भक्ति–भाव को सामने रखते हुए शृंगार के संयोग तथा वियोग पक्ष का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है, तो दूसरी ओर मातृ–हृदय की उत्कण्ठाओं, बालक कृष्ण की लीलाओं द्वारा वात्सल्य का अनूठा चित्र प्रस्तुत किया है। उन्होंने बाल–स्वभाव की सूक्ष्मतम रेखाओं में स्वर्णिम रंग भरा है, जो अद्वितीय है। बाल–स्वभाव, बाल सुलभ चेष्टाओं, कौतुक प्रियता एवं उत्सुकता का जिस गहनता से चित्रण किया है, वह हिन्दी साहित्य में ही नहीं, अपितु विश्व साहित्य में भी बेजोड़ है। बाल–मनोविज्ञान में उनकी गहरी पैठ देखकर ऐसा लगता है कि वे गोपाल कृष्ण का साथ कभी नहीं छोड़ते। कभी वे यशोदा के ममतापूर्व हृदय में बैठकर कृष्ण की लीलाओं को निहारते हैं, तो कभी नंद बाबा के रूप में कान्हा की स्नेहमय झाँकियाँ देखते हैं। कृष्ण के बालजीवन से सम्बद्ध सम्पूर्ण क्रीड़ाओं, कृष्ण–जन्म, नाक–छेदन, नामकरण, अँगूठा चूसना, बहाने बनाना आदि बाल–सुलभ क्रियाओं का विशद विवेचन सूर ने किया है। कभी वे 'मैया मैं तो चन्द्र खिलौना लैंहो' कहकर बाल सुलभ हठ को चित्रित करते हैं, तो कभी 'मैया कबहुँ बढ़ेगी चोटी' कहकर 'बाल–जिज्ञासा' को व्यक्त करते हैं। निःसन्देह उनके वात्सल्य के पद शाश्वत स्वर के रूप में विद्यमान रहेंगे।

वात्सल्य के साथ–साथ सूर सख्य एवं माधुर्य चित्रण में भी अप्रतिम हैं। शृंगार का कोई ऐसा पक्ष नहीं है जो उनकी दृष्टि से अछूता रहा हो। उनके संयोग में जहाँ असीम आनन्द की अनुभूति है, वहीं वियोग में वेदना की पराकाष्ठा है। संयोग की अपेक्षा उनका विप्रलम्भ पक्ष अत्यन्त मनमोहक बन पड़ा है। श्रीकृष्ण के मथुरा–गमन से दुखित गोकुल के गोप–गोपी, पशु–पक्षी सभी अश्रुपूरित नेत्रों से कृष्ण–आगमन की प्रतीक्षा करने लगे। सच तो यह है कि सूरदास की सूक्ष्म दृष्टि शृंगार के व्यापक क्षेत्र में अबाध गति से संचरित होती रही है।

'भ्रमरगीत' सूरदास की मौलिक एवं नवीन उद्भावना है। भ्रमर को माध्यम बनाकर वे जिस तरह निर्गुण पर सगुण की, ज्ञान–योग पर भक्ति की तथा दर्शन पर प्रेम की विजय दर्शाते हैं, वह हिन्दी साहित्य में अप्रतिम है। 'भ्रमरगीत' के चित्रण में उन्होंने जिस उपालम्भ शैली को अपनाया है, गोपियों की जिस वचन–वक्रता को दर्शाया है, वह नि'सन्देह पाठक को रोमांचित कर देती है। गोपियों के हृदय की जिस पवित्रता एवं निश्छलता को सूर ने भ्रमरगीत में दर्शाया है, वह इस बात का प्रमाण है कि यह भक्ति शृंगार की अश्लीलता से सर्वथा रहित थी। उद्धव के द्वारा निराकार ब्रह्म की प्रतिष्ठा का भ्रमरगीत में गोपियों द्वारा सहज रूप से खंडन किया गया है। सच तो यह है कि 'भ्रमरगीत' में बौद्धिकता और अकाट्य तर्कों के रहने पर भी मार्मिकता की सफल अभिव्यक्ति हुई है।

हिन्दी सगुण साहित्य को सूरदास की एक महत्वपूर्ण देन यह भी है कि उन्होंने कृष्ण के वर्णन में अपनी मौलिक उद्भावना का परिचय देते हुए पूर्व में वर्णित कृष्ण के ब्रह्म रूप को छोड़कर लौकिक स्वरूप को अपनाया है। जहाँ भागवत में कृष्ण का ब्रह्मत्व सर्वत्र छाया रहा है, वहीं हिन्दी कृष्ण काव्य में कृष्ण को बाल रूप में बाल लीलाएँ तथा युवा रूप में प्रणय लीलायें करते दिखाया है।

सूरदास की कृष्णभक्ति के मूल में एकमात्र भगवद् रति ही प्रमुख है जो पात्रानुसार वात्सल्य, सख्य और कान्ता भावों में परिणत हो जाती है। वास्तव में सूरदास की भक्ति–भावना का मेरुदंड पुष्टिमार्ग का सिद्धान्त भगवद् अनुग्रह है। इसी को आधार मानकर वे वात्सल्य, सख्य और माधुर्य भाव की नाना पद्धतियों में भाव–व्यंजना में लीन रहे।

उद्देश्य

श्री कृष्ण एवं ग्वालों तथा श्रीराम एवं शबरी में भेद–भाव मिटाने वाला, समाज के विकास एवं लोक–कल्याण हेतु, मर्यादा व आदर्श की स्थापना करने वाला, आम जनमानस के भावों को अभिव्यक्ति प्रदान करने वाला सगुण भक्ति काव्य समाज में आदर्शवादिता, समन्वयवादिता एवं 'वसुधैव कटुम्बकम्' की भावना को बढ़ाने में सफल रहा है। जहाँ तुलसी ने राम के आदर्श परिवार के चित्रण में वैयक्तिक, पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में मर्यादावाद की स्थापना की, वही सूरदास ने भ्रमरगीत के माध्यम से प्रेम के उदात्त रूप की प्रतिस्थापना की है।

उपसंहार

निःसन्देह सगुण भक्त कवियों तुलसीदास व सूरदास ने मध्ययुगीन हिन्दू जनता में जिस रूप में ईश्वरीय विश्वास पैदा किया, वह अभूतपूर्व था। निराशा के भँवर में डूबी हुई, अवसाद एवं कुंठा की शिकार हिन्दू जाति के लिए इनके द्वारा चित्रित ईश्वर का अवतारी रूप संजीवनी सिद्ध हुआ। वास्तव में ये दोनों सगुण भक्त कवि माँ भारती के ऐसे उज्ज्वल नेत्र हैं जिन्होंने अपनी वाणी के द्वारा ज्ञान की ऐसी गंगा प्रवाहित की है जो निःसन्देह आने वाली पीढ़ियों के लिए आत्मसात करने योग्य है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 देशराज भाटी, सूरदास और उनका साहित्य, प्रथम संस्करण, 1973
2. डॉ0 माया प्रकाश पाण्डेय, गोस्वामी तुलसीदास, प्रथम संस्करण, 1999
3. डॉ0 ब्रदीनारायण श्रोत्रिय, सूर एवं तुलसी की सौंदर्य भावना, प्रथम संस्करण, 1991